अष्टपाहुड पद्यानुवाद

दर्शनपाहुड़

(हरिगीत)

कर नमन जिनवर वृषभ एवं वीर श्री वर्द्धमान को।
संक्षिप्त दिग्दर्शन यथाक्रम करूँ दर्शनमार्ग का।।१।।
सद्धर्म का है मूल दर्शन जिनवरेन्द्रों ने कहा।
हे कानवालो सुनो! दर्शनहीन वंदन योग्य ना।।२।।
दृगभ्रष्ट हैं वे भ्रष्ट हैं उनको कभी निर्वाण ना।
हों सिद्ध चारित्रभ्रष्ट पर दृगभ्रष्ट को निर्वाण ना।।३।।
जो जानते हों शास्त्र सब पर भ्रष्ट हों सम्यक्त्व से।
घूमें सदा संसार में आराधना से रहित वे।।४।।
यद्यपि करें वे उग्रतप शत-सहस-कोटि वर्ष तक।
पर रत्नत्रय पावें नहीं सम्यक्त्व विरहित साधु सब।।५।।
सम्यक्त्व दर्शन ज्ञान बल अर वीर्य से वर्द्धमान जो।
वे शीघ्र ही सर्वज्ञ हों, कलिकलुसकल्मस रहित जो।।६।।
सम्यक्त्व की जलधार जिनके नित्य बहती हृदय में।
वे कर्मरज से ना बंधे पहले बंधे भी नष्ट हों।।७।।
जो ज्ञान-दर्शन-भ्रष्ट हैं चारित्र से भी भ्रष्ट हैं।
वे भ्रष्ट करते अन्य को वे भ्रष्ट से भी भ्रष्ट हैं।।८।।
तप शील संयम व्रत नियम अर योग गुण से युक्त हों।
फिर भी उन्हें वे दोष दें जो स्वयं दर्शन भ्रष्ट हों।।९।।
जिस तरह द्रुम परिवार की वृद्धि न हो जड़ के बिना।
बस उस तरह ना मुक्ति हो जिनमार्ग में दर्शन बिना।।१०।।

मूल ही है मूल ज्यों शाखादि द्रुम परिवार का।
बस उस तरह ही मुक्तिमग का मूल दर्शन को कहा।।११।।
चाहें नमन दृगवन्त से पर स्वयं दर्शनहीन हों।
है बोधिदुर्लभ उन्हें भी वे भी वचन-पग हीन हों।।१२।।
जो लाज गारव और भयवश पूजते दृगभ्रष्ट को।
की पाप की अनुमोदना ना बोधि उनको प्राप्त हो।।१३।।
त्रैयोग से हों संयमी निर्ग्रन्थ अन्तर-बाह्य से।
त्रिकरण शुध अर पाणिपात्री मुनीन्द्रजन दर्शन कहे।।१४।।
सम्यक्त्व से हो ज्ञान सम्यक् ज्ञान से सब जानना।
सब जानने से ज्ञान होता श्रेय अर अश्रेय का।।१५।।
श्रेयाश्रेय के परिज्ञान से दु:शील का परित्याग हो।
अर शील से हो अभ्युदय अर अन्त में निर्वाण हो।।१६।।
जिनवचन अमृत औषधी जरमरणव्याधि के हरण।
अर विषयसुख के विरेचक हैं सर्वदु:ख के क्षयकरण।।१७।।
एक जिनवर लिंग है उत्कृष्ट श्रावक दूसरा।
अर कोई चौथा है नहीं, पर आर्यिका का तीसरा।।१८।।
छह द्रव्य नव तत्त्वार्थ जिनवर देव ने जैसे कहे।
है वही सम्यग्दृष्टि जो उस रूप में ही श्रद्धहै।।१९।।
जीवादि का श्रद्धान ही व्यवहार से सम्यक्त्व है।
पर नियतनय से आत्म का श्रद्धान ही सम्यक्त्व है।।२०।।
जिनवरकथित सम्यक्त्व यह गुण रतनत्रय में सार है।
सद्भाव से धारण करो यह मोक्ष का सोपान है।।२१।।
जो शक्य हो वह करें और अशक्य की श्रद्धा करें।
श्रद्धान ही सम्यक्त्व है इस भाँति सब जिनवर कहें।।२२।।
ज्ञान दर्शन चरण में जो नित्य ही संलग्न हैं।
गणधर करें गुण कथन जिनके वे मुनीजन वंद्य हैं।।२३।।

सहज जिनवर लिंग लख ना नमें मत्सर भाव से।
बस प्रगट मिथ्यादृष्टि हैं संयम विरोधी जीव वे।।२४।।
अमर वंदित शील मण्डित रूप को भी देखकर।
ना नमें गारब करें जो सम्यक्त्व विरहित जीव वे।।२५।।
असंयमी ना वन्द्य है दृगहीन वस्त्रविहीन भी।
दोनों ही एक समान हैं दोनों ही संयत हैं नहीं।।२६।।
ना वंदना हो देह की कुल की नहीं ना जाति की।
कोई करे क्यों वंदना गुणहीन श्रावक-साधु की।।२७।।
गुण शील तप सम्यक्त्व मंडित ब्रह्मचारी श्रमण जो।
शिवगमन तत्पर उन श्रमण को शुद्धमन से नमन हो।।२८।।
चौसठ चमर चौंतीस अतिशय सहित जो अरहंत हैं।
वे कर्मक्षय के हेतु सबके हितैषी भगवन्त हैं।।२९।।
ज्ञान-दर्शन-चरण तप इन चार के संयोग से।
हो संयमित जीवन तभी हो मुक्ति जिनशासन विषैं।।३०।।
ज्ञान ही है सार नर का और समकित सार है।
सम्यक्त्व से हो चरण अर चारित्र से निर्वाण है।।३१।।
सम्यक्पने परिणमित दर्शन ज्ञान तप अर आचरण।
इन चार के संयोग से हो सिद्ध पद सन्देह ना।।३२।।
समकित रतन है पूज्यतम सब ही सुरासुर लोक में।
क्योंकि समकित शुद्ध से कल्याण होता जीव का।।३३।।
प्राप्तकर नरदेह उत्तम कुल सहित यह आतमा।
सम्यक्त्व लह मुक्ति लहे अर अखय आनन्द परिणमे।।३४।।
हजार अठ लक्षण सहित चौंतीस अतिशय युक्त जिन।
विहरें जगत में लोकहित प्रतिमा उसे थावर कहें।।३५।।
द्वादश तपों से युक्त क्षयकर कर्म को विधिपूर्वक।
तज देह जो व्युत्सर्ग युत, निर्वाण पावें वे श्रमण।।३६।।

-●-

सूत्रपाहुड़

अरहंत-भासित ग्रथित-गणधर सूत्र से ही श्रमणजन।
परमार्थ का साधन करें अध्ययन करो हे भव्यजन।।१।।
जो भव्य हैं वे सूत्र में उपदिष्ट शिवमग जानकर।
जिनपरम्परा से समागत शिवमार्ग में वर्तन करें।।२।।
डोरा सहित सुइ नहीं खोती गिरे चाहे वन-भवन।
संसार-सागर पार हों जिनसूत्र के ज्ञायक श्रमण।।३।।
संसार में गत गृहीजन भी सूत्र के ज्ञायक पुरुष।
निज आतमा के अनुभवन से भवोदधि से पार हों।।४।।
जिनसूत्र में जीवादि बहुविध द्रव्य तत्त्वारथ कहे।
हैं हेय पर व अहेय निज जो जानते सद्दृष्टि वे।।५।।
परमार्थ या व्यवहार जो जिनसूत्र में जिनवर कहे।
सब जान योगी सुख लहें मलपुंज का क्षेपण करें।।६।।
सूत्रार्थ से जो नष्ट हैं वे मूढ़ मिथ्यादृष्टि हैं।
तुम खेल में भी नहीं धरना यह सचेलक वृत्तियाँ।।७।।
सूत्र से हों भ्रष्ट जो वे हरीहर सम क्यों न हों।
स्वर्गस्थ हों पर कोटि भव अटकत फिरें ना मुक्त हों।।८।।
सिंह सम उत्कृष्ट चर्या हो तपी गुरु भार हो।
पर हो यदी स्वच्छन्द तो मिथ्यात्व है अर पाप हो।।९।।
निश्चेल एवं पाणिपात्री जिनवरेन्द्रों ने कहा।
बस एक है यह मोक्षमारग शेष सब उन्मार्ग हैं।।१०।।
संयम सहित हों जो श्रमण हों विरत परिग्रहारंभ से।
वे वन्द्य हैं सब देव-दानव और मानुष लोक से।।११।।
निजशक्ति से सम्पन्न जो बाइस परीषह को सहें।
अर कर्म क्षय वा निर्जरा सम्पन्न मुनिजन वंद्य हैं।।१२।।

अवशेष लिंगी वे गृही जो ज्ञान दर्शन युक्त हैं।
शुभ वस्त्र से संयुक्त इच्छाकार के वे योग्य हैं।।१३।।
मर्मज्ञ इच्छाकार के अर शास्त्र सम्मत आचरण।
सम्यक् सहित दुष्कर्म त्यागी सुख लहें परलोक में।।१४।।
जो चाहता नहिं आतमा वह आचरण कुछ भी करे।
पर सिद्धि को पाता नहीं संसार में भ्रमता रहे।।१५।।
बस इसलिए मन वचन तन से आत्म की आराधना।
तुम करो जानो यत्न से मिल जाय शिवसुख साधना।।१६।।
बालाग्र के भी बराबर ना परीग्रह हो साधु के।
अर अन्य द्वारा दत्त पाणीपात्र में भोजन करें।।१७।।
जन्मते शिशुवत् अकिंचन नहीं तिल-तुष हाथ में।
किंचित् परीग्रह साथ हो तो श्रमण जाँयें निगोद में।।१८।।
थोड़ा-बहुत भी परिग्रह हो जिस श्रमण के पास में।
वह निन्द्य है निर्ग्रन्थ होते जिनश्रमण आचार में।।१९।।
महाव्रत हों पाँच गुप्ती तीन से संयुक्त हों।
निरग्रन्थ मुक्ती पथिक वे ही वंदना के योग्य हैं।।२०।।
जिनमार्ग में उत्कृष्ट श्रावक लिंग होता दूसरा।
भिक्षा ग्रहण कर पात्र में जो मौन से भोजन करे।।२१।।
अर नारियों का लिंग तीजा एक पट धारण करें।
वह नग्न ना हो दिवस में इकबार ही भोजन करें।।२२।।
सिद्ध ना हो वस्त्रधर वह तीर्थकर भी क्यों न हो।
बस नग्नता ही मार्ग है अर शेष सब उन्मार्ग हैं।।२३।।
नारियों की योनि नाभी काँख अर स्तनों में।
जिन कहे हैं बहु जीव सूक्षम इसलिए दीक्षा न हो।।२४।।
पर यदी वह सद्दृष्टि हो संयुक्त हो जिनमार्ग में।
सद्आचरण से युक्त तो वह भी नहीं है पापमय।।२५।।

चित्तशुद्धी नहीं एवं शिथिलभाव स्वभाव से।
मासिकधरम से चित्त शंकित रहे वंचित ध्यान से।।२६।।
जलनिधि से पटशुद्धिवत जो अल्पग्राही साधु हैं।
हैं सर्व दुख से मुक्त वे इच्छा रहित जो साधु हैं।।२७।।

-●-

चारित्रपाहुड़

सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी अमोही अरिहंत जिन।
त्रैलोक्य से हैं पूज्य जो उनके चरण में कर नमन।।१।।
ज्ञान-दर्शन-चरण सम्यक् शुद्ध करने के लिए।
चारित्रपाहुड़ कहूँ मैं शिवसाधना का हेतु जो।।२।।
जो जानता वह ज्ञान है जो देखता दर्शन कहा।
समयोग दर्शन-ज्ञान का चारित्र जिनवर ने कहा।।३।।
तीन ही ये भाव जिय के अखय और अमेय हैं।
इन तीन के सुविकास को चारित्र दो विध जिन कहा।।४।।
है प्रथम सम्यक्त्वाचरण जिन ज्ञानदर्शन शुद्ध है।
है दूसरा संयमचरण जिनवर कथित परिशुद्ध है।।५।।
सम्यक्त्व के जो दोष मल शंकादि जिनवर ने कहे।
मन-वचन-तन से त्याग कर सम्यक्त्व निर्मल कीजिए।।६।।
निशंक और निकांक्ष अर निर्ग्लान दृष्टि-अमूढ़ है।
उपगूहन अर थितिकरण वात्सल्य और प्रभावना।।७।।
इन आठ गुण से शुद्ध सम्यक् मूलत: शिवथान है।
सद्ज्ञानयुत आचरण यह सम्यक्चरण चारित्र है।।८।।
सम्यक्चरण से शुद्ध अर संयमचरण से शुद्ध हों।
वे समकिती सद्ज्ञानिजन निर्वाण पावें शीघ्र ही।।९।।
सम्यक्चरण से भ्रष्ट पर संयमचरण आचरें जो।
अज्ञान मोहित मती वे निर्वाण को पाते नहीं।।१०।।

विनयवत्सल दयादानरु मार्ग का बहुमान हो।
संवेग हो हो उपागूहन स्थितिकरण का भाव हो।।११।।
अर सहज आर्जव भाव से ये सभी लक्षण प्रगट हों।
तो जीव वह निर्मोह मन से करे सम्यक् साधना।।१२।।
अज्ञानमोहित मार्ग की शंसा करे उत्साह से।
श्रद्धा कुदर्शन में रहे तो बमे सम्यक्भाव को।।१३।।
सद्ज्ञान सम्यक्भाव की शंसा करे उत्साह से।
श्रद्धा सुदर्शन में रहे ना बमे सम्यक्भाव को।।१४।।
तज मूढ़ता अज्ञान हे जिय ज्ञान-दर्शन प्राप्त कर।
मद मोह हिंसा त्याग दे जिय अहिंसा को साधकर।।१५।।
सब संग तज ग्रह प्रव्रज्या रम सुतप संयमभाव में।
निर्मोह हो तू वीतरागी लीन हो शुधध्यान में।।१६।।
मोहमोहित मलिन मिथ्यामार्ग में ये भूल जिय।
अज्ञान अर मिथ्यात्व कारण बंधनों को प्राप्त हो।।१७।।
सद्ज्ञानदर्शन जानें देखें द्रव्य अर पर्यायों को।
सम्यक् करे श्रद्धान अर जिय तजे चरणज दोष को।।१८।।
सद्ज्ञानदर्शनचरण होते हैं अमोही जीव को।
अर स्वयं की आराधना से हरें बन्धन शीघ्र वे।।१९।।
सम्यक्त्व के अनुचरण से दुख क्षय करें सब धीरजन।
अर करें वे जिय संख्य और असंख्य गुणमय निर्जरा।।२०।।
सागार अर अनगार से यह द्विविध है संयमचरण।
सागार हों सग्रन्थ अर निर्ग्रन्थ हों अणगार सब।।२१।।
देशव्रत सामायिक प्रोषध सचित निशिभुज त्यागमय।
ब्रह्मचर्य आरम्भ ग्रन्थ तज अनुमति अर उद्देश्य तज।।२२।।
पाँच अणुव्रत तीन गुणव्रत चार शिक्षाव्रत कहे।
यह गृहस्थ का संयमचरण इस भांति सब जिनवर कहें।।२३।।

त्रसकायवध अर मृषा चोरी तजे जो स्थूल ही।
परनारि का हो त्याग अर परिमाण परिग्रह का करे।।२४।।
दिशि-विदिश का परिमाण दिग्व्रत अर अनर्थकदण्डव्रत।
परिमाण भोगोपभोग का ये तीन गुणव्रत जिन कहें।।२५।।
सामायिका प्रोषध तथा व्रत अतिथिसंविभाग है।
सल्लेखना ये चार शिक्षाव्रत कहे जिनदेव ने।।२६।।
इस तरह संयमचरण श्रावक का कहा जो सकल है।
अनगार का अब कहूँ संयमचरण जो कि निकल है।।२७।।
संवरण पंचेन्द्रियों का अर पंचव्रत पच्चिस क्रिया।
त्रय गुप्ति समिति पंच संयमचरण है अनगार का।।२८।।
सजीव हो या अजीव हो अमनोज्ञ हो या मनोज्ञ हो।
ना करे उनमें राग-रुस पंच इन्द्रियाँ, संवर कहा।।२९।।
हिंसा असत्य अदत्त अब्रह्मचर्य और परिग्रहा।
इनसे विरति सम्पूर्णत: ही पंच मुनिमहाव्रत कहे।।३०।।
ये महाव्रत निष्पाप हैं अर स्वयं से ही महान हैं।
पूर्व में साधे महाजन आज भी हैं साधते।।३१।।
मनो गुप्ती वचन गुप्ती समिति ईर्या ऐषणा।
आदाननिक्षेपण समिति ये हैं अहिंसा भावना।।३२।।
सत्यव्रत की भावनायें क्रोध लोभरु मोह भय।
अर हास्य से है रहित होना ज्ञानमय आनन्दमय।।३३।।
हो विमोचितवास शून्यागार हो उपरोध बिन।
हो एषणाशुद्धी तथा संवाद हो विसंवाद बिन।।३४।।
त्याग हो आहार पौष्टिक आवास महिलावासमय।
भोगस्मरण महिलावलोकन त्याग हो विकथा कथन।।३५।।
इन्द्रियों के विषय चाहे मनोज्ञ हों अमनोज्ञ हों।
नहीं करना राग-रुस ये अपरिग्रह व्रत भावना।।३६।।

ईर्या भाषा एषणा आदाननिक्षेपण सही।
एवं प्रतिष्ठापना संयमशोधमय समिती कही।।३७।।
सब भव्यजन संबोधने जिननाथ ने जिनमार्ग में।
जैसा बताया आतमा हे भव्य ! तुम जानो उसे।।३८।।
जीव और अजीव का जो भेद जाने ज्ञानि वह।
रागादि से हो रहित शिवमग यही है जिनमार्ग में।।३९।।
तू जान श्रद्धाभाव से उन चरण-दर्शन-ज्ञान को।
अतिशीघ्र पाते मुक्ति योगी अरे जिनको जानकर।।४०।।
ज्ञानजल में नहा निर्मल शुद्ध परिणति युक्त हो।
त्रैलोक्यचूड़ामणि बने एवं शिवालय वास हो।।४१।।
ज्ञानगुण से हीन इच्छितलाभ को ना प्राप्त हों।
यह जान जानो ज्ञान को गुणदोष को पहिचानने।।४२।।
पर को न चाहें ज्ञानिजन चारित्र में आरूढ़ हो।
अनूपम सुख शीघ्र पावें जान लो परमार्थ से।।४३।।
इसतरह संक्षेप में सम्यक्चरण संयमचरण।
का कथन कर जिनदेव ने उपकृत किये हैं भव्यजन।।४४।।
स्फुट रचित यह चरित पाहुड़ पढ़ो पावन भाव से।
तुम चतुर्गति को पारकर अपुनर्भव हो जाओगे।।४५।।

-•-

बोधपाहुड़

शास्त्रज्ञ हैं सम्यक्त्व संयम शुद्धतप संयुक्त हैं।
कर नमन उन आचार्य को जो कषायों से रहित हैं।।१।।
अर सकलजन संबोधने जिनदेव ने जिनमार्ग में।
छहकाय सुखकर जो कहा वह मैं कहूँ संक्षेप में।।२।।
ये आयतन अर चैत्यगृह अर शुद्ध जिनप्रतिमा कही।
दर्शन तथा जिनबिम्ब जिनमुद्रा विरागी ज्ञान ही।।३।।

हैं देव तीरथ और अर्हन् गुणविशुद्धा प्रव्रज्या।
अरिहंत ने जैसे कहे वैसे कहूँ मैं यथाक्रम।।४।।
आधीन जिनके मन-वचन-तन इन्द्रियों के विषय सब।
कहे हैं जिनमार्ग में वे संयमी ऋषि आयतन।।५।।
हो गये हैं नष्ट जिनके मोह राग-द्वेष मद।
जिनवर कहें वे महाव्रतधारी ऋषि ही आयतन।।६।।
जो शुक्लध्यानी और केवलज्ञान से संयुक्त हैं।
अर जिन्हें आतम सिद्ध है वे मुनिवृषभ सिद्धायतन।।७।।
जानते मैं ज्ञानमय परजीव भी चैतन्यमय।
सद्ज्ञानमय वे महाव्रतधारी मुनी ही चैत्यगृह।।८।।
मुक्ति-बंधन और सुख-दुःख जानते जो चैत्य वे।
बस इसलिए षट्काय हितकर मुनी ही हैं चैत्यगृह।।९।।
सद्ज्ञानदर्शनचरण से निर्मल तथा निर्ग्रन्थ मुनि।
की देह ही जिनमार्ग में प्रतिमा कही जिनदेव ने।।१०।।
जो देखे जाने रमे निज में ज्ञानदर्शन चरण से।
उन ऋषीगण की देह प्रतिमा वंदना के योग्य है।।११।।
अनंतदर्शन-ज्ञान-सुख अर वीर्य से संयुक्त हैं।
हैं सदासुखमय देहबिन कर्माष्टकों से युक्त हैं।।१२।।
अनुपम अचल अक्षोभ हैं लोकाग्र में थिर सिद्ध हैं।
जिनवर कथित व्युत्सर्ग प्रतिमा तो यही ध्रुव सिद्ध है।।१३।।
सम्यक्त्व संयम धर्ममय शिवमग बतावनहार जो।
वे ज्ञानमय निर्ग्रन्थ ही दर्शन कहे जिनमार्ग में।।१४।।
दूध घृतमय लोक में अर पुष्प हैं ज्यों गंधमय।
मुनिलिंगमय यह जैनदर्शन त्योंहि सम्यक् ज्ञानमय।।१५।।
जो कर्मक्षय के लिए दीक्षा और शिक्षा दे रहे।
वे वीतरागी ज्ञानमय आचार्य ही जिनबिंब हैं।।१६।।

सद्ज्ञानदर्शन चेतनामय भावमय आचार्य को।
अतिविनय वत्सलभाव से वंदन करो पूजन करो।।१७।।
व्रततप गुणों से शुद्ध सम्यक्भाव से पहिचानते।
दें दीक्षा शिक्षा यही मुद्रा कही है अरिहंत की।।१८।।
निज आतमा के अनुभवी इन्द्रियजयी दृढ़ संयमी।
जीती कषायें जिन्होंने वे मुनी जिनमुद्रा कही।।१९।।
संयमसहित निजध्यानमय शिवमार्ग ही प्राप्तव्य है।
सद्ज्ञान से हो प्राप्त इससे ज्ञान ही ज्ञातव्य है।।२०।।
है असंभव लक्ष्यबिधना बाणबिन अभ्यासबिन।
मुक्तिमग पाना असंभव ज्ञानबिन अभ्यासबिन।।२१।।
मुक्तिमग का लक्ष्य तो बस ज्ञान से ही प्राप्त हो।
इसलिए सविनय करें जन-जन ज्ञान की आराधना।।२२।।
मति धनुष श्रुतज्ञान डोरी रत्नत्रय के बाण हों।
परमार्थ का हो लक्ष्य तो मुनि मुक्तिमग नहीं चूकते।।२३।।
धर्मार्थ कामरु ज्ञान देवे देव जन उसको कहें।
जो हो वही दे नीति यह धर्मार्थ कारण प्रव्रज्या।।२४।।
सब संग का परित्याग दीक्षा दयामय सद्धर्म हो।
अर भव्यजन के उदय कारक मोह विरहित देव हों।।२५।।
सम्यक्त्वव्रत से शुद्ध संवर सहित अर इन्द्रियजयी।
निरपेक्ष आतमतीर्थ में स्नान कर परिशुद्ध हों।।२६।।
यदि शान्त हों परिणाम निर्मलभाव हों जिनमार्ग में।
तो जान लो सम्यक्त्व संयम ज्ञान तप ही तीर्थ है।।२७।।
नाम थापन द्रव्य भावों और गुणपर्यायों से।
च्यवन आगति संपदा से जानिये अरिहंत को।।२८।।
अनंत दर्शन ज्ञानयुत आरूढ़ अनुपम गुणों में।
कर्माष्ट बंधन मुक्त जो वे ही अरे अरिहंत हैं।।२९।।

जन्ममरणजरा चतुर्गतिगमन पापरु पुण्य सब।
दोषोत्पादक कर्म नाशक ज्ञानमय अरिहंत हैं।।३०।।
गुणथान मार्गणथान जीवस्थान अर पर्याप्ति से।
और प्राणों से करो अरहंत की स्थापना।।३१।।
आठ प्रातिहार्य अरु चौंतीस अतिशय युक्त हों।
सयोगकेवलि तेरवें गुणस्थान में अरहंत हों।।३२।।
गति इन्द्रिय कायरु योग वेद कसाय ज्ञानरु संयमा।
दर्शलेश्या भव्य सम्यक् संज्ञिना आहार हैं।।३३।।
आहार तन मन इन्द्रि श्वासोच्छ्वास भाषा छहों इन।
पर्याप्तियों से सहित उत्तम देव ही अरहंत हैं।।३४।।
पंचेन्द्रियों मन-वचन-तन बल और श्वासोच्छ्वास भी।
अर आयु - इन दश प्राणों में अरिहंत की स्थापना।।३५।।
सैनी पंचेन्द्रियों नाम के इस चतुर्दश जीवस्थान में।
अरहंत होते हैं सदा गुणसहित मानवलोक में।।३६।।
व्याधी बुढ़ापा श्वेद मल आहार अर नीहार से।
थूक से दुर्गन्ध से मल-मूत्र से वे रहित हैं।।३७।।
अठ सहस लक्षण सहित हैं अर रक्त है गोक्षीर सम।
दश प्राण पर्याप्ती सहित सर्वांग सुन्दर देह है।।३८।।
इसतरह अतिशयवान निर्मल गुणों से संयुक्त हैं।
अर परम औदारिक श्री अरिहंत की नरदेह है।।३९।।
राग-द्वेष विकार वर्जित विकल्पों से पार हैं।
कषायमल से रहित केवलज्ञान से परिपूर्ण हैं।।४०।।
सद्दृष्टि से सम्पन्न अर सब द्रव्य-गुण-पर्याय को।
जो देखते अर जानते जिननाथ वे अरिहंत हैं।।४१।।
शून्यघर तरुमूल वन उद्यान और मसान में।
वसतिका में रहें या गिरिशिखर पर गिरिगुफा में।।४२।।

चैत्य आलय तीर्थ वच स्ववशासक्तस्थान में।
जिनभवन में मुनिवर रहें जिनवर कहें जिनमार्ग में।।४३।।
इन्द्रियजयी महाव्रतधनी निरपेक्ष सारे लोक से।
निजध्यानरत स्वाध्यायरत मुनिश्रेष्ठ ना इच्छा करें।।४४।।
परिषहजयी जितकषायी निर्ग्रन्थ है निर्मोह है।
है मुक्त पापारंभ से ऐसी प्रव्रज्या जिन कही।।४५।।
धन-धान्य पट अर रजत-सोना आसनादिक वस्तु के।
भूमि चंवर-छत्रादि दानों से रहित हो प्रव्रज्या।।४६।।
जिनवर कही है प्रव्रज्या समभाव लाभालाभ में।
अर कांच-कंचन मित्र-अरि निन्दा-प्रशंसा भाव में।।४७।।
प्रव्रज्या जिनवर कही सम्पन्न हों असंपन्न हों।
उत्तम मध्यम घरों में आहार लें समभाव से।।४८।।
निर्ग्रन्थ है नि:संग है निर्मान है नीराग है।
निर्दोष है निरआश है जिन प्रव्रज्या ऐसी कही।।४९।।
निर्लोभ है निर्मोह है निष्कलुष है निर्विकार है।
निस्नेह निर्मल निराशा जिन प्रव्रज्या ऐसी कही।।५०।।
शान्त है है निरायुध नग्नत्व अवलम्बित भुजा।
आवास परकृत निलय में जिन प्रव्रज्या ऐसी कही।।५१।।
उपशम क्षमा दम युक्त है शृंगारवर्जित रूक्ष है।
मदरागरुस से रहित है जिनप्रव्रज्या ऐसी कही।।५२।।
मूढ़ता विपरीतता मिथ्यापने से रहित है।
सम्यक्त्व गुण से शुद्ध है जिन प्रवज्या ऐसी कही।।५३।।
जिनमार्ग में यह प्रव्रज्या निर्ग्रन्थता से युक्त है।
भव्य भावे भावना यह कर्मक्षय कारण कही।।५४।।
जिसमें परिग्रह नहीं अन्तर्बाह्य तिलतुषमात्र भी।
सर्वज्ञ के जिनमार्ग में जिनप्रव्रज्या ऐसी कही।।५५।।

परिषह सहें उपसर्ग जीतें रहें निर्जन देश में।
शिला पर या भूमितल पर रहें वे सर्वत्र ही।।५६।।
पशु-नपुंसक-महिला तथा कुस्शीलजन की संगति।
ना करें विकथा ना करें रत रहें अध्ययन-ध्यान में।।५७।।
सम्यक्त्व संयम तथा व्रत-तप गुणों से सुविशुद्ध हो।
शुद्ध हो सद्गुणों से जिन प्रव्रज्या ऐसी कही।।५८।।
आयतन से प्रव्रज्या तक यह कथन संक्षेप में।
सुविशुद्ध समकित सहित दीक्षा यों कही जिनमार्ग में।।५९।।
षट्काय हितकर जिसतरह ये कहे हैं जिनदेव ने।
बस उसतरह ही कहे हमने भव्यजन संबोधने।।६०।।
जिनवरकथित शब्दत्वपरिणत समागत जो अर्थ है।
बस उसे ही प्रस्तुत किया भद्रबाहु के इस शिष्य ने।।६१।।
अंग बारह पूर्व चउदश के विपुल विस्तार विद।
श्री भद्रबाहु गमकगुरु जयवंत हो इस जगत में।।६२।।

-●-